माहिय दारुचीरिय

एवं

भद्दा कुण्डलकेसा

(बिना आँसवा आवाज करने वालों में अग्र)

विपश्यना विशोधन विन्यास

भगवान बुद्ध की उद्घोषणा

****

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं
खिप्पाभिञ्ञानं यदिदं वाहियो दारुचीरियो।"

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम साविकानं भिक्खुनीनं
खिप्पाभिञ्ञानं यदिदं भद्दा कुण्डलकेसा।"

-अङ्गुत्तरनिकाय (१.१.२१६, २४३)

"भिक्षुओ, मेरे भिक्षु-श्रावकों में – क्षिप्र-अभिज्ञा
प्राप्त करने वालों में अग्र हैं वाहिय दारुचीरिय।"

"भिक्षुओ, मेरी भिक्षुणी-श्राविकाओं में – क्षिप्र-अभिज्ञा
प्राप्त करने वालियों में अग्र हैं भद्दा कुण्डलकेसा।"

****

बाहिय दारुचीरिय एवं भद्दा कुण्डलकेसा

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय [vii]

बाहिय दारुचीरिय १

सुप्पारक पत्तन १
वर्तमान कथा १
बाहिय हितैषी ब्रह्मा २
ऐसा ही सीखना चाहिए ३
क्षिप्र-अभिज्ञा प्राप्त बाहिय दारुचीरिय ६
बाहिय दारुचीरिय का पूर्व दुष्कर्म ७

भद्दा कुण्डलकेसा ८

भद्दा-सत्तुक का जन्म ८
यौवनकाल ९
भद्दा-सत्तुक का विवाह १०
प्रत्युत्पन्नमति भद्दा १०
सत्तुक द्वारा भद्दा की हत्या का षड्यंत्र ११
भद्दा का गृहत्याग १३
जंबु परिव्राजिका १४
परिव्राजिका का स्थविर सारिपुत्त के साथ शास्त्रार्थ . १५
अतीत कथा १६
भगवान पदुमुत्तर का शासनकाल १६
भगवान कस्सप का शासनकाल १७
भगवान गौतम बुद्ध का शासनकाल १७
कुण्डलकेसा के उद्गार १८
परिशिष्ट २०
विपश्यना साहित्य २३
विपश्यना साधना के केंद्र २६

प्रकाशकीय

भगवान बुद्ध की शिक्षा सभी के लिए एक-समान थी – चाहे कोई पुरुष हो या नारी। किसी प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं। जो इस पथ पर चले उसी के लिए आशुफलदायिनी। सभी को एक-समान फल देने वाली।

बुद्ध की शिक्षा का अनुकरण कर बाहिय दारुचीरिय तथा भद्दा कुण्डलकेसा ने एक-समान निर्वाण का फल चखा। भगवान ने अपने भिक्षु-श्रावकों तथा भिक्षुणी-श्राविकाओं में आयुष्मान बाहिय दारुचीरिय तथा भद्दा कुण्डलकेसा को क्षिप्र-अभिज्ञा (शीघ्र विशिष्ट ज्ञान) प्राप्त करने वालों में अग्र की उपाधि प्रदान की।

****

किसी दुर्घटनावश बाहिय दारुचीरिय नाम का व्यक्ति सुप्पारक नामक गांव में वास करने लगा। वह अर्हत माना जाता था। वह भी अपने आप को अर्हत कहने लगा था।

परंतु एक दिन किसी हितैषी ने बड़े प्यार से उसे समझाया कि वह अभी अर्हत नहीं हुआ है और न ही अर्हत होने के मार्ग पर आरूढ़ है। उसने उत्सुकतावश प्रश्न किया, "क्या इस जगत में कोई ऐसा व्यक्ति है जो अर्हत हो गया हो?"

उत्तर मिला – "हां, अवश्य है। इस समय भगवान अर्हत सम्यक-संबुद्ध सावत्थी के जेतवन में विहार कर रहे हैं।"

उसने राजनगरी सावत्थी की ओर शीघ्रता से कदम बढ़ाये। कुछ दूर चलने पर भगवान सम्यक-संबुद्ध को राजपथ पर भिक्षाटन के लिए जाते हुए देखा। तब श्रद्धाविभोर हो भगवान के सामने घुटने टेक दिये, उनके चरणों पर सिर रख दिया।

– "भंते, भगवान! मुझे शुद्ध धर्म की साधना सिखाइए, जिससे मेरा चिरकाल तक हित-सुख सधे।"

– "बाहिय! धर्म सिखाने के लिए यह अनुकूल समय नहीं है, तथागत इस समय भिक्षाटन पर निकले हैं।"

– "भंते, भगवान! जिंदगी का क्या भरोसा? न मेरी जिंदगी का, न आपकी जिंदगी का! भंते, भगवान! मुझे धर्म दीजिए। सुगत! मुझे (शुद्ध धर्म की) साधना सिखाइए, जिससे चिरकाल तक मेरा हित-सुख सधे।"

– बाहिय दारुचीरिय द्वारा दुबारा, तिबारा आग्रह किये जाने पर वहीं राह पर एक ओर रुक कर, भगवान ने उसे धर्मदेशना दी। संक्षेप में धर्म-साधना सिखायी।

कहा – "इस प्रकार अभ्यास करना सीख – **दिट्ठे दिट्ठमत्तं भविस्सति**; देखने में मात्र देखना ही हो। इसी प्रकार सुनने में मात्र सुनना, सूंघने में मात्र सूंघना, चखने में मात्र चखना, छूने में मात्र छूना, और जानने में मात्र जानना ही हो।"

समझदार बाहिय दारुचीरिय ने भगवान के इस संक्षिप्त उपदेश को खूब गहराई से समझा। बाहिय दारुचीरिय पूर्वपारमीसंपन्न था। देखते-देखते सभी पूर्वसंचित भव-संस्कारों से छुटकारा मिला और चित्त अनासक्त हो, आस्रवों से विमुक्त हो गया। परम पद निर्वाण का साक्षात्कार हो गया। बाहिय दारुचीरिय कृतकृत्य हुआ।

****

भद्दा राजगह के एक श्रेष्ठी के यहां जन्मी। जब वह यौवनावस्था में पहुँची तब एक दिन नगर-रक्षकों द्वारा सत्तुक नामक चोर को राजा के समक्ष ले जाया जा रहा था। भद्दा सत्तुक पर आसक्त हो गयी। किसी तरह से उसने सत्तुक को नगर-रक्षकों के चंगुल से मुक्त कराया तथा उसके साथ विवाह रचाया।

भद्दा के दिन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगे। परंतु थोड़े समय में ही सत्तुक का चोरस्वभाव पुनः लौट आया। सत्तुक ने भद्दा की हत्या कर उसके आभूषणों को हथियाने का षड्यंत्र रचा। इस प्रयोजन हेतु वह भद्दा को एक पर्वत पर ले गया। वहां उसने भद्दा को अपनी मंशा प्रकट करते हुए कहा – 'मैं तेरी हत्या कर तेरे सारे आभूषण प्राप्त करना चाहता हूं।' भयभीत भद्दा ने अपने प्राणों की रक्षा बड़ी ही बुद्धिमत्ता से की।

इस घटना के पश्चात उसके द्वारा परिव्राजकों से प्रव्रज्या की मांग किये जाने पर वह प्रव्रजित हो गयी तथा **'भद्दा कुण्डलकेसा'** के नाम से प्रसिद्ध हुई। धीरे-धीरे शास्त्रार्थ में वह निपुण हो गयी। एक अवसर पर आयुष्मान सारिपुत्त के साथ हुए शास्त्रार्थ में उसे पराजय का सामना करना पड़ा। आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा उसे भगवान की शरण में जाकर धर्मदेशना के लिए प्रोत्साहित किया गया। अल्प समय में ही भद्दा कुण्डलकेसा ने अर्हत्व की प्राप्ति की। भगवान ने कुण्डलकेसा को अपनी क्षिप्र-अभिज्ञा वाली भिक्षुणियों में अग्र घोषित किया।

****

भगवान बुद्ध के भिक्षु-श्रावकों एवं भिक्षुणी-श्राविकाओं के जीवन के प्रेरणादायी प्रसंग हम सबकी प्रेरणा का कारण बनें जिससे विपश्यी साधक एवं साधिकाएं उनसे प्रेरणा पाकर अपनी जीवन-शैली का पुनरवलोकन कर इसका यत्किंचित परिष्कार कर सकें। इन मंगलभावों के साथ इस पुस्तिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

विपश्यना विशोधन विन्यास

बाहिय दारुचीरिय

सुप्पारक पत्तन

मुंबई महानगरी से लगभग पचास मील दूर पश्चिम रेल्वे पर एक छोटा-सा स्टेशन है – नल्ला। समीप ही समुद्र के किनारे एक छोटा-सा गांव है – सुप्पारा। दो हजार पांच सौ वर्ष पूर्व के भारत का यह अत्यंत प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण बंदरगाह था। उस युग की मुंबई। नाम था सुप्पारक पत्तन। पत्तन कहते हैं बंदरगाह को।

वर्तमान कथा

बाहिय राष्ट्र में उत्पन्न बाहिय नाम का व्यक्ति अपने व्यापार-धंधे के सिलसिले में सुवर्णभूमि जाने वाली नौका पर सवार हुआ। नौका अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने से पूर्व ही समुद्र के बीच ही छिन्न-भिन्न हो गयी। बाहिय के अतिरिक्त नौका पर सवार सभी लोग समुद्र में रहने वाले प्राणियों – कछुओं एवं मछलियों के भक्ष्य बन गये। बाहिय किसी तरह टूटी नाव का एक तख्ता पकड़कर तैरता हुआ सुप्पारक पत्तन के तट पर जा पहुँचा। बाहिय के शरीर पर कोई कपड़ा शेष न था। उसे उस स्थान पर कुछ भी नहीं मिलने के कारण उसने सूखी लकड़ियों की छालों के सहारे अपने शरीर को ढँका। दारु (याने पेड़ की छाल) अर्थात वल्कल के चीवर, पहने हुए था, इसलिए जिसने देखा उसने उसे दारुचीरिय कहा। इस प्रकार वह बाहिय दारुचीरिय के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बाहिय को इस रूप में देखकर लोग उसे भोजन, वस्त्र इत्यादि दानस्वरूप भेंट करते। बाहिय ने सोचा – "अगर मैं मनुष्यों द्वारा दिये गये वस्त्रों को पहनूंगा तो मेरा लाभ-सत्कार नष्ट हो जायगा।" बाहिय का वस्त्रों के प्रति अनासक्त भाव देखकर लोग उससे और अधिक प्रभावित होते।

देखते ही देखते विपुल जनसंख्या वाली उस महानगरी के अनेक धनीमानी लोग बाहिय के श्रद्धालु भक्त बन गये। सैकड़ों की सँख्या में लोग

नित्य दर्शन करने आते, चरणों की धूलि सिर पर चढ़ाते, पर्याप्त दान-दक्षिणा, भरपूर खाद्य सामग्री और दवादारू अर्पित कर अपने आपको धन्य मानते। भक्तों द्वारा की गई महिमा ने वाहिय के मन में यह विश्वास पैदा कर दिया कि वह अवश्य ही अरहंत अवस्था को प्राप्त हो गया है; जीवन्मुक्त हो भवबंधनों से छूट गया है।

वाहिय हितैषी ब्रह्मा

भगवान कस्सप बुद्ध के काल में सात भिक्षुओं ने धर्मशासन के लोप होने से पूर्व ही मुक्त अवस्था प्राप्त करने की ठानी। वे सभी अप्रमादी हो, परिश्रमपूर्वक ध्यान-साधना में रत हो गये। शीघ्र ही उनमें से एक अरहंत अवस्था को प्राप्त हो गये तथा अन्य एक ने अनागामी अवस्था को प्राप्त किया। समय रहते अरहंत अवस्था को प्राप्त भिक्षु परिनिवृत्त हुए तथा अनागामी अवस्था प्राप्त भिक्षु ब्रह्मलोकगामी हुए। शेष पांच स्थविर कुछ विशेष प्राप्त न कर निराहार रह सातवें दिन कालकवलित हो देवलोकगामी हुए। वर्तमान बुद्ध (भगवान गौतम) के काल में क्रमशः वे पांच भिक्षु राजा पुक्कुसाति, कुमारकस्सप, दारुचीरिय, दव्व मल्लपुत्त एवं सभिय परिव्राजक के रूप में पैदा हुए।

अर्हत अवस्था प्राप्ति की मिथ्या धारणा के साथ लाभ-सत्कार के बंधनों में जकड़े हुए वाहिय को जब भगवान कस्सप के समय अनागामी अवस्था प्राप्त ब्रह्मलोकगामी ब्रह्मा ने इस अवस्था में देखा तब उन्होंने अपने पूर्व साथी वाहिय का मार्गदर्शन करने की सोची। ब्रह्मा ने वाहिय के मन में अर्हत अवस्था प्राप्ति के मिथ्या भ्रम के आवरण को दूर करते हुए कहा – "वाहिय! न तो तुम अभी अर्हत हुए हो, और न ही तुम अर्हत होने के मार्ग पर आरूढ़ हो। तुम ऐसी साधना ही नहीं कर रहे हो जिससे कि तुम अर्हत मार्ग पर आरूढ़ हो सको।"

ब्रह्मा के शब्दों ने वाहिय के अंतःकरण को झकझोर दिया। उसे लगा कि मैं अनायास ही अपने को अर्हत माने हुए प्रमाद कर रहा था जबकि सच्चाई यह है कि न तो मैं अर्हत हुआ हूं और न ही मैं अर्हत मार्ग पर आरूढ़ हुआ हूं।

वाहिय ने उत्सुकतावश ब्रह्मा से पूछा – "इस संसार में क्या कोई अर्हत या अर्हत मार्ग पर आरूढ़ व्यक्ति हैं?"

ब्रह्मा ने उत्तर दिया – "हां, अवश्य हैं। इस समय वे भगवान अर्हत सम्यक-संबुद्ध सावत्थी (श्रावस्ती) के जेतवन आराम में विहार कर रहे हैं। वे स्वयं अर्हत है, तथा अर्हत मार्ग प्राप्ति की देशना भी करते हैं।"

– खुद्दकनिकाय धम्मपद-अट्ठकथा-१ (२.बाहियदारुचीरियत्थेरवत्थु)

ऐसा ही सीखना चाहिए

तब उस ब्रह्मा द्वारा समुत्तेजित किये जाने पर वाहिय दारुचीरिय सुप्पारक से (श्रावस्ती की ओर) चल पड़ा। मार्ग में कहीं भी एक रात से ज्यादा न रुककर शीघ्र ही वह श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम जा पहुँचा। उस समय बहुत से भिक्षु खुले मैदान में चंक्रमण कर रहे थे। तब वाहिय दारुचीरिय ने उन भिक्षुओं के पास जाकर कहा – "भंते! इस समय भगवान, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध कहां विहार कर रहे हैं? मैं उन भगवान अर्हत सम्यक-संबुद्ध के दर्शन पाना चाहता हूं।"

"वाहिय! इस समय भगवान भिक्षाटन के लिए गांव में प्रविष्ट हुए हैं।"

तब वाहिय दारुचीरिय ने जेतवन से निकलकर श्रावस्ती की ओर शीघ्रता से कदम बढ़ाये। (कुछ दूर चलने पर) भगवान सम्यक-संबुद्ध को राजपथ पर भिक्षाटन के लिए जाते हुए देखा और अपलक, अवाक देखता ही रह गया – कैसा महान मंगल-विधायक व्यक्तित्व! धीर गंभीर सौम्य शांत मुखमुद्रा, करुणा-विगलित नयन, शरीर के अंग-अंग में प्रस्फुटित संयम और शांति की अनुपम आभा, अंग-अंग के अणु-अणु से प्रवहमान अनंत मैत्री की अजस्र तरंगें। बाहिय ने भगवान के सामने घुटने टेक दिये, उनके चरणों पर सिर रख कर कहा – "भंते भगवान! मुझे धर्म दीजिए। सुगत! मुझे (शुद्ध धर्म की) साधना सिखाइए, जिससे मेरा चिरकाल तक हित-सुख सधे।"

भगवान ने बाहिय दारुचीरिय को यह कहा – "बाहिय, यह अनुकूल समय नही हैं। तथागत इस समय भिक्षाटन पर निकले हैं।"

दुबारा बाहिय दारुचीरिय ने भगवान से निवेदन किया – "भंते, भगवान! जिंदगी का क्या भरोसा? न मेरी जिंदगी का, न आपकी जिंदगी का! भंते, भगवान! मुझे धर्म दीजिए। सुगत! मुझे (शुद्ध धर्म की) साधना सिखाइए, जिससे मेरा चिरकाल तक हित-सुख सधे।"

भगवान ने दुबारा वाहिय दारुचीरिय को यह कहा – "वाहिय, यह अनुकूल समय नहीं है। तथागत इस समय भिक्षाटन पर निकले हैं।"

तिबारा वाहिय दारुचीरिय ने भगवान से निवेदन किया – "भंते, भगवान! जिंदगी का क्या भरोसा? न मेरी जिंदगी का, न आपकी जिंदगी का! भंते, भगवान! मुझे धर्म दीजिए। सुगत! मुझे (शुद्ध धर्म की) साधना सिखाइए, जिससे मेरा चिरकाल तक हित-सुख सधे।"

"तो वाहिय, तुमको ऐसा सीखना चाहिए (इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए।)

– **'दिट्ठे दिट्ठमत्तं भविस्सति** - देखने में मात्र देखना ही हो।

– **'सुते सुतमत्तं भविस्सति** - सुनने में मात्र सुनना ही हो।

– **'मुते मुतमत्तं भविस्सति** - सूंघने में मात्र सूंघना हो, चखने में मात्र चखना हो, छूने में मात्र छूना ही हो।

– **'विञ्ञाते विञ्ञातमत्तं भविस्सति'** - जानने में मात्र जानना ही हो।' वाहिय, तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिए। वाहिय, जब देखने में मात्र देखना होगा, सुनने में मात्र सुनना होगा, सूंघने में मात्र सूंघना होगा, चखने में मात्र चखना होगा, छूने में मात्र छूना होगा, जानने में मात्र जानना होगा तो **ततो त्वं न तेन** याने इस देखने, सुनने आदि के कारण से तुम हो, यह भ्रांति दूर होगी और तभी **ततो त्वं न तत्थ** याने इस देखने, सुनने आदि में तुम हो, यह भ्रम भी मिटेगा। यही दुःखों का अंत है।"

तब वाहिय दारुचीरिय का चित्त भगवान की इस संक्षिप्त धम्मदेशना को सुनकर आस्रवों से विमुक्त हो गया।

भगवान भी वाहिय दारुचीरिय को यह संक्षिप्त धर्मदेशना देकर आगे बढ़ गये। भगवान के चले जाने के थोड़ी देर बाद ही एक गाय के तरुण बछड़े ने वाहिय को ऐसे उठाकर पटका जिससे उसकी जीवन-लीला ही समाप्त हो गयी।

तब भगवान ने श्रावस्ती से भिक्षाटन कर बहुत से भिक्षुओं के साथ नगर से निकल कर मार्ग में वाहिय दारुचीरिय को मृत देखकर भिक्षुओं को कहा – "भिक्षुओ! वाहिय दारुचीरिय के शरीर को उठाओ, इसे मंच पर रखकर इसका दाह-संस्कार करो, उसके भस्म पर एक स्तूप का निर्माण

कराओ। भिक्षुओ! तुम्हारा यह साथी (सब्रह्मचारी) काल को प्राप्त हो गया है।"

"बहुत अच्छा!" भगवान को कह वे भिक्षु वाहिय दारुचीरिय के शरीर को मंच पर रखकर दाह-संस्कार कर उस राख पर स्तूप बनवा कर भगवान के पास गये। भगवान का अभिवादन कर भिक्षुओं ने भगवान से कहा – "भंते! वाहिय दारुचीरिय के शरीर का क्रियाकर्म कर उस पर स्तूप बनवा दिया गया। भंते! उसकी क्या गति हुई, उसने कहां पुनर्जन्म लिया?"

"भिक्षुओ! वाहिय दारुचीरिय पंडित था, उसने मेरे कहे धर्मोपदेश को शीघ्र ही सम्यक-रूप से ग्रहण कर लिया, उसने मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया। भिक्षुओ! वाहिय दारुचीरिय परिनिर्वाण को प्राप्त कर चुका है।"

तब इसे जान, भगवान के मुख से उस समय यह गाथा निकल पड़ी –

"यत्थ आपो च पथवी, तेजो वायो न गाधति।
न तत्थ सुक्का जोतन्ति, आदिच्चो नप्पकासति।
न तत्थ चन्दिमा भाति, तमो तत्थ न विज्जति॥
"यदा च अत्तनावेदि, मुनि मोनेन ब्राह्मणो।
अथ रूपा अरूपा च, सुखदुक्खा पमुच्चती"ति॥

["जहां न पृथ्वी, न जल, न अग्नि और न वायु का ही प्रवेश है। जहां न शुक्र की ज्योति है, न सूर्य का प्रकाश है, न चंद्रमा का उजाला है और जहां आलोक का अभाव भी नहीं, याने अंधकार भी नहीं है। कोई ब्राह्मण मुनि मौन पथ पर चल कर इसे स्वयं जान लेता है तो सारे रूप और अरूप लोकों से पार चला जाता है। सुख-दुःख के द्वंद्वों से मुक्ति पा लेता है।"

– खुद्दकनिकाय उदानपालि १०. वाहियसुत्त

[**देखें** – *साधकों के स्पष्टीकरण के लिए* : भगवान द्वारा वाहिय दारुचीरिय को दी गयी संक्षिप्त धर्मदेशना **दिट्ठे दिट्ठमत्तं भविस्सति** - के संबंध में 'जागे पावन प्रेरणा' पुस्तक में प्रकाशित विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का के लेख का कुछ अंश - **परिशिष्ट**]

क्षिप्र-अभिज्ञा प्राप्त बाहिय दारुचीरिय

भगवान ने भिक्षुओं को बाहिय दारुचीरिय द्वारा परिनिर्वाण प्राप्त किये जाने के बारे में बताते हुए कहा "भिक्षुओ! मेरे क्षिप्र-अभिज्ञा (तत्काल विशिष्ट ज्ञान) प्राप्त करने वाले भिक्षुओं में बाहिय दारुचीरिय अग्र हैं" यह कहते हुए भगवान ने बाहिय दारुचीरिय को अग्र स्थान पर प्रतिष्ठापित किया। भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ – इतने अल्पकाल में कोई कैसे अर्हत्व प्राप्त कर सकता है? भिक्षुओं ने भगवान से पूछा – "भंते! आप कह रहे हैं कि बाहिय दारुचीरिय ने अर्हत्व अवस्था प्राप्त कर ली थी। उसने कब अर्हत्व प्राप्त किया?"

"भिक्षुओ! मेरे द्वारा धर्मोपदेश के श्रवणमात्र से।"

"भंते! आपने बाहिय दारुचीरिय को कब धर्मदेशना दी?"

"भिक्षाटन करते समय गली में खड़े होकर।"

"भंते! आपके द्वारा गली में खड़े होकर कहा गया धर्म (**दिट्ठे दिट्ठमत्तं भविस्सति .....**) अल्प मात्र था। इतने कहे मात्र के श्रवण कर लेने से कोई कैसे इतना शीघ्र विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकता है?"

"भिक्षुओ! मेरे द्वारा कहे गये धर्म को 'थोड़ा अथवा अधिक' ऐसा प्रमाण से मत लो। यदि हजारों गाथाएं निरर्थक हों और एक गाथा सार्थक हो, तो वह एक सार्थक गाथा उन हजार निरर्थक गाथाओं से श्रेयस्कर है। यह कह कर भगवान ने प्रकरण से मेल मिलाकर धर्म देशना करते हुए यह गाथा कही –

सहस्समपि चे गाथा, अनत्थपदसंहिता।
एकं गाथापदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति॥

– धम्मपद १०१ (सहस्सवग्गो)

[निरर्थक पदों से युक्त हजार गाथाओं की अपेक्षा एक (अकेला सार्थक) गाथापद श्रेयस्कर होता है जिसे सुनकर (कोई व्यक्ति) शांत हो जाता है।]

– खुद्दकनिकाय धम्मपद-अट्ठकथा-१ (२.वाहियदारुचीरियत्थेरवत्थु)

बाहिय दारुचीरिय का पूर्व दुष्कर्म

अतीत काल में एक यक्षिणी ने पुक्कुसाति कुलपुत्र, बाहिय दारुचीरिय, तम्बदाठिक चोरघातक और सुप्पबुद्ध कुष्ठि को सैकड़ों जन्मों में गाय होकर उन्हें मार डाला था। ये चारों अपने किसी पूर्वजन्म में श्रेष्ठिपुत्र के रूप में जन्मे। एक दिन किसी अति सुंदर नगर गणिका को उद्यान में ले जाकर उसके शरीर का भोग करने की सोची। उद्यान में किसी और को न देखकर नगर गणिका के शरीर को भोगकर इन चारों ने उस नगर गणिका को दिये गये हजार कार्षापण तथा उसके गहनों को वापस लेकर उसकी हत्या करने को उद्यत हो गये। इन चारों श्रेष्ठिपुत्रों द्वारा उसकी हत्या किये जाने पर नगर गणिका ने प्रण किया – "जिस प्रकार ये मेरी हत्या कर रहे हैं, उसी प्रकार मैं भी इन चारों की अनेक जन्मों तक हत्या करूंगी।"

चरन्ति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं, यं होति कटुकप्फलं॥

– धम्मपद ६६ (बालवग्गो)

[बाल-बुद्धि वाले मूर्ख जन अपने ही शत्रु बन कर आचरण करते हैं और ऐसे पापकर्म करते हैं जिनका फल (स्वयं उनके अपने लिए ही) कड़ुवा होता है।]

– खुद्दकनिकाय धम्मपद-अट्ठकथा-१ (७.सुप्पबुद्धकुट्ठिवत्थु)

भद्दा कुण्डलकेसा

भद्दा-सत्तुक का जन्म

भद्दा और उसका पति सत्तुक – दोनों एक ही दिन राजगह (राजगृह, राजगीर, राजगिरि) में पैदा हुए। अपने पूर्वजन्मों में भद्दा ने कौमारिक ब्रह्मचर्य का पालन कर संघ को निवास हेतु परिवेण बनवा कर दान दिया। इसके फलस्वरूप वह भगवान गौतम बुद्ध के काल में एक धनवान श्रेष्ठी कुल में जन्मी। बचपन में उसकी शिष्टता और सुंदरता के कारण उसे भद्दा (भद्रा) के नाम से पुकारा जाने लगा।

जिस दिन राजगह में भद्दा का जन्म हुआ, उसी दिन राजपुरोहित के घर में एक पुत्र ने जन्म लिया। उसके जन्म के समय राजमहल सहित पूरे नगर में रात को आयुध प्रज्वलित होते रहे। प्रातःकाल पुरोहित राजभवन गया और महाराज का कुशल-क्षेम पूछा।

राजा ने कहा – "आचार्य! रात भर सो नहीं सका। सारी रात महल में आयुध प्रज्वलित होते रहे।"

राजपुरोहित ने राजा से कहा – "महाराज आप भयभीत न हों। राजमहल सहित पूरा नगर कल रात आयुध से प्रज्वलित होता रहा।"

"आचार्य! इसका क्या कारण है?"

"महाराज! हमारे घर अद्भुत नक्षत्र में एक बालक ने जन्म लिया है। वह पूरे नगर का शत्रु होकर उत्पन्न हुआ है। आयुध का प्रज्वलित होना उसका ही पूर्व निमित्त है। पर इससे आपको कोई क्षति नहीं होगा। फिर भी यदि महाराज आज्ञा दें तो इस बालक को मार दिया जाय।"

"यदि इसे कोई क्षति नहीं, तो उसे मारने की क्या आवश्यकता?"

'बालक पूर्वजन्मों के कर्मानुसार नगर का शत्रु होकर जन्मा है' यह सोच राजपुरोहित ने बालक का नाम सत्तुक (शत्रु) रख दिया।

यौवनकाल

श्रेष्ठी की संतानों में भद्दा सबसे छोटी थी। घर में सबकी – मां-बाप, भाइयों की – दुलारी थी। बड़े ही लाड़-प्यार से उसका पालन-पोषण हो रहा था। बढ़कर बालिका से किशोरी, फिर सुंदर युवती हुई।

उधर पुरोहित-पुत्र भी धीरे-धीरे बढ़ रहा था। जब उसने जरा होश संभाला तब वह जहां कहीं जाता वहां पर पड़ी वस्तुओं को देखकर अपने घर में उठा लाता। इस प्रकार वह माता-पिता के घर को परायी वस्तुओं से भरने लगा। माता-पिता की डांट का उस पर तनिक भी असर न पड़ता। जब वह यौवनावस्था में पहुँचा तब पिता द्वारा लाख समझाये जाने पर भी वह चौरकर्म को न त्याग सका। तब पिता ने उसे धौंतियां तथा एक कुदाल देते हुए यह कहकर घर से निष्कासित कर दिया कि 'तू इन्हीं के सहारे अपना जीविकोपार्जन कर।' सत्तुक शरीर से हृष्ट-पुष्ट, आकर्षक शरीर वाला था। उसने धीरे-धीरे नगरवासियों के घरों में सेंधमारी करनी शुरू कर दी। नगर का कोई भी घर शेष न रहा जिसमें उसने सेंधमारी न की हो। अपने चाल-चलन और आचरण के कारण सचमुच सत्तुक पूरे नगर का शत्रु बन गया।

एक दिन महाराज अपने सारथी के साथ नगर भ्रमण के लिए निकले। उन्होंने हर घर की दीवारों में छिद्र देखकर सारथी से उसकी वजह पूछी। इस पर सारथी ने महाराज को उत्तर दिया – "महाराज! इस नगर में सत्तुक नाम का चोर है जो लोगों की दीवारों में छेद कर सेंधमारी कर उनके धन को हर ले जाता है।"

महाराज ने नगर-रक्षकों को बुलाकर पूछा – "इस नगर में अमुक नाम का चोर है। तुम उसे क्यों नहीं पकड़ते?"

नगर-रक्षकों ने महाराज से कहा – "महाराज! उस चोर को हम चुराये हुए धन के साथ अभी तक नहीं देख पाये हैं।"

तब महाराज ने उन नगर-रक्षकों को उस चोर को यथाशीघ्र पकड़ने के लिए चेतावनी देते हुए कहा – "यदि तुम सब उसे आज पकड़ोगे तो जीवित रहोगे अन्यथा तुम्हें राजदंड मिलेगा।"

नगर-रक्षकों ने दूसरे ही दिन सत्तुक को सेंध मारकर दूसरों के सामान को ले जाते हुए पकड़ लिया।

भद्दा-सत्तुक का विवाह

नगर-रक्षक उस चोर को पकड़ कर उसके हाथों को पीठ पीछे बांध कर चौराहे पर चाबुक से पीटते हुए राजमहल की तरफ राजा के समक्ष ले जा रहे थे। जब वे सत्तुक के साथ भद्दा के महल के पास से गुजर रहे थे तब भीड़ का शोर सुनकर श्रेष्ठि-पुत्री ने खिड़की से बाहर झांका। सत्तुक पर उसकी दृष्टि पड़ी। सुंदर नवयुवक पर वह मुग्ध हो गयी। भद्दा सत्तुक को प्राप्त करने की इच्छा को मन में संजोये हुए अपने शयन-कक्ष में आकर दोनों हाथों से अपनी छाती पकड़कर औंधेमुँह लेट गयी।

बेटी को ऐसी हालत में देखकर मां ने पूछा – "बेटी क्या बात है?" भद्दा ने मां को नगर-रक्षकों द्वारा राजमहल की ओर ले जाते हुए उस चोर को इंगित करते हुए कहा – "अगर मैं उस सुंदर युवक को प्राप्त कर सकूंगी तो ही जिंदा रहूंगी अन्यथा उसके वियोग में मैं अपने प्राण त्याग दूंगी।"

मां ने धन-धान्य, ऐश्वर्य में अपने समान कुल में किसी सुंदर युवक के साथ पुत्री का विवाह करने के लिए प्रस्ताव रखा। पर भद्दा अपनी जिद्द पर अड़ी रही। उसके हठ के आगे सारे परिवार को झुकना पड़ा।

लाचार श्रेष्ठी ने राजपुरुषों को घूस देकर किसी प्रकार सत्तुक को मुक्त करा लिया। सैनिकों ने चोर की जगह किसी और को मारकर कार्य संपन्न होने की बात महाराज को बता दी।

श्रेष्ठी के आदमी सत्तुक को घर ले आये। पिता ने विभिन्न प्रकार के सुगंधित जल से उसे स्नान कराया। वस्त्राभूषण से सुसज्जित किया। भद्दा के साथ उसका विवाह संपन्न हुआ।

प्रत्युत्पन्नमति भद्दा

भद्दा के दिन सुखपूर्वक बीतने लगे। वह वस्त्राभूषणों से सजी-सँवरी रहती। अपने आचरण से पति को प्रसन्न रखती। उसके स्वर्णाभूषणों को देखकर एक दिन सत्तुक का चोर मन जाग उठा। उसके मन में अपनी पत्नी भद्दा को जान से मारकर उसके आभूषणों को हथियाने के भाव प्रकट होने लगे। उसे एक युक्ति सूझी। वह खाना-पीना छोड़ दुःखी मन शय्या पर लेट गया। पति को इस अवस्था में देख व्याकुल पत्नी ने पति से पूछा – "क्या आपको कोई रोग हो गया है?"

सत्तुक बोला – "भद्दे! मुझे कोई रोग नहीं हुआ है।" "क्या आप मेरे माता-पिता से क्रुद्ध है?" इस पर भी पति द्वारा नकारात्मक उत्तर मिलने पर पत्नी ने पुनः पूछा – "स्वामी आपको हुआ क्या है?"

इस पर सत्तुक बोला – "भद्दे! जब राजपुरुष मुझे बंधनों में बाँधकर राजा के समीप ले जा रहे थे, तब मैं चौरप्रपात के देवता के समक्ष मन-ही-मन मनौती मान बैठा था कि यदि मैं जीवित रहूंगा तो आपको बलि चढ़ाऊंगा। उस देवता द्वारा मेरी मनौती स्वीकार किये जाने के फलस्वरूप तुम मुझे प्राप्त हुई हो। अतः मुझे उसी की चिंता सता रही है।

प्रसन्न-चित्त भद्दा बोली – "स्वामी! आप तनिक भी चिंता मत कीजिए। आपको इस प्रयोजन हेतु जिस वस्तु की आवश्यकता होगी, मैं उसकी पूर्ति करूंगी।" भद्दा बलिकर्म के लिए उचित वस्तुओं की व्यवस्था कर चौरप्रपात जाने के लिए सगे-संबंधियों के साथ तैयार हो गयी।

सत्तुक द्वारा भद्दा की हत्या का षड्यंत्र

सत्तुक मन-ही-मन प्रसन्न हुआ। उसे विश्वास हो गया कि वह अपने षड्यंत्र में अवश्य ही सफल होगा। पर्वत-पाद पर पहुँचकर सत्तुक ने भद्दा से कहा – "भद्दे! अच्छा होगा कि हम दोनों ही चौरप्रपात के देवता के पास चलें। अपने सगे-संबंधियों को वापस लौटा दो।" भद्दा ने पति की आज्ञा को सहर्ष शिरोधार्य किया।

केवल भद्दा को साथ लेकर सत्तुक पर्वत शिखर की ओर चढ़ने लगा। पर्वत का आकार इस प्रकार था कि एक तरफ से ही मनुष्य उस पर चढ़ सकते थे तथा दूसरी तरफ सीधा पर्वत इस प्रकार का था कि कोई व्यक्ति वहां से गिरे तो कई टुकड़ों में विभक्त हो जाय। इस कारण इस पर्वत को 'चौरप्रपात' भी कहा जाता था। कई बार पर्वत के इस पार्श्व से राजदंडस्वरूप चोरों को गिराया भी जाता था।

भद्दा के हाथ में पूजा की थाली थी। प्रिय पति की मनोकामना पूरी करने की धुन में वह अति प्रसन्न थी। दोनों शिखर पर पहुँचे। पत्नी ने पति को बलिकर्म की औपचारिकताएं पूरी करने के लिए कहा जिस पर सत्तुक चुप ही रहा। तब भद्दा ने पति की खामोशी का कारण पूछा। इस पर सत्तुक ने पूरे आक्रोशभाव के साथ पत्नी से कहा – "अरी! तुझे क्या लगता है मैं यहां

तुझे बलिकर्म के प्रयोजन से लेकर साथ लाया हूं। मुझे तो तुझे मारकर तेरे सारे गहने प्राप्त करने हैं। इस छल के साथ मैं तुझे यहां लेकर आया हूं।"

मृत्युभय से कांपती हुई भद्दा ने सत्तुक से कहा – "स्वामी! मैं और मेरे समस्त आभूषण आप के ही हैं, फिर आप ऐसा छल मेरे साथ क्यों कर रहे हैं?" भद्दा ने सत्तुक से अनेक प्रकार से अनुनय-विनय किया – "सुवर्ण, मोतियों से जटित मेरे सारे आभूषण आप ले लें। मुझे आप अपने समाज में अपनी दासी घोषित कर दें। इसके बदले आप मुझे जीवित रहने दें।" सत्तुक ने कहा – "अगर मैं तुझे जीवित छोड़ देता हूं तो तू सब कुछ अपने माता-पिता से कह देगी। इसलिए मैं तेरी हत्या करूंगा ही। तू व्यर्थ का प्रलाप मत कर। जल्दी से अपने आभूषणों की पोटली बांध कर मुझे सौंप दे।"

भद्दा को अपने प्राण संकट में दिखे। उसने मन-ही-मन सोचा – "बुद्धि कोई पकाकर खाने योग्य वस्तु नहीं होती। ऐसे ही संकट के समय उपयोग किये जाने योग्य होती है। अतः मुझे अपने प्राणों की रक्षा के लिए कोई युक्ति सोचनी चाहिए।"

भद्दा ने सत्तुक से कहा – "स्वामी! राजपुरुषों द्वारा आपको राजा के पास ले जाते समय मेरे माता-पिता ने उन्हें एक हजार मुद्राएं देकर मेरे कहने पर आपको बंधन से मुक्त कराया था। मेरे साथ आपका विवाह संपन्न हुआ। उस दिन से मैं आपकी तन-मन-धन से सेवा कर रही हूं। आज मुझे अंतिम बार पुनः आपकी सेवा करने का मौका प्राप्त हो।" सत्तुक ने अपनी पत्नी की इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए सहमति जतलायी।

भद्दा ने पति की तीन बार प्रदक्षिणा की, चार स्थानों से वंदना कर बोली – "स्वामी! मेरे लिए यह आपका अंतिम दर्शन है। आगे मुझे आपके दर्शन दुर्लभ होंगे।" इसके साथ ही वह पति का आलिंगन करने लगी।

आलिंगन करते समय चतुर भद्दा ने उसे ऐसा धक्का दिया कि वह वहां से लुढ़कते हुये क्षत-विक्षत हो पहाड़ के नीचे जा गिरा। उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी।

चौरप्रपात के उस देवता ने भद्दा द्वारा संकट की घड़ी में अपने प्राणों की रक्षा के लिए बुद्धिमत्तापूर्ण कदम उठाये जाने का साधुवाद करते हुए यह गाथा कही –

"न हि सब्बेसु ठानेसु, पुरिसो होति पण्डितो।
इत्थीपि पण्डिता होति, तत्थ तत्थ विचक्खणा"ति।

– खुद्दकनिकाय अपदान थेरी (२.३.३१)

["सभी जगहों पर पुरुष ही बुद्धिमान नहीं हुआ करते। कहीं-कहीं स्त्री भी उससे अधिक बुद्धिमान हो जाती है।"]

भद्दा का गृहत्याग

पर्वत शिखर पर जो कुछ हुआ उसका भद्दा को अफसोस हुआ और संतोष भी। अफसोस इस बात का कि वह अवस्थाजन्य आवेश में बहकर मानव-स्वभाव को नहीं समझ सकी। संतोष इस बात का कि उसने अपने जीवन की रक्षा कर ली।

भद्दा ने सोचा – "यदि अब मैं घर जाती हूं तो लोग मुझसे मेरे पति के बारे में पूछेंगे और यदि मैं यह कहती हूं कि मैंने उसे मार दिया तो मुझे यह कहकर धिक्कारेंगे कि 'नगर-रक्षकों को हजार मुद्राएं दिलवाकर जिस व्यक्ति की रक्षा कर अपना घर बसाया आज उसे ही मार दिया' और यदि मैं यह कहती हूं कि मेरे आभूषण प्राप्त करने के लिए मुझे वह मारना चाहता था तो भी लोग मुझ पर विश्वास नहीं करेंगे।" यह सब सोच भद्दा ने घर वापस जाना उचित नहीं समझा।

वह अपने सारे आभूषणों को वहीं छोड़ परिव्राजकों के एक आश्रम में पहुँची। परिव्राजकों का अभिवादन कर भद्दा ने उनसे प्रव्रज्या की मांग की। परिव्राजकों ने भद्दा के केशों को लुंचित कर प्रव्रजित किया। तदुपरांत भद्दा के केश राशि-राशि होकर कुंडल की तरह गोल हो बढ़ते थे। इस कारण भद्दा कुण्डलकेसा के नाम से जानी जाने लगी। परिव्राजिका भद्दा ने परिव्राजकों से पूछा – "भंते! आपकी इस प्रव्रज्या में क्या श्रेष्ठ है?"

उन्होंने कहा – "भद्दे! ध्यानभावना को बढ़ाना या फिर एक हजार प्रश्नों को कंठस्थ करना, यही हमारी प्रव्रज्या में श्रेष्ठ है।"

भद्दा ने कहा – "ध्यानभावना को बढ़ाना मेरे वश की बात नहीं है। हां, एक हजार प्रश्नों को कंठस्थ करना मेरे लिए आसान है।"

उन उन परिव्राजकों ने भद्दा को एक हजार प्रश्न कंठस्थ करा दिये। उन परिव्राजकों के निर्देशों का पालन करती हुई भद्दा ने यथासमय बहुत से अन्य शिष्य सीख लिए तथा समस्त जंबुद्वीप में विचरण कर वह ऐसे व्यक्ति की तलाश करने के लिए तत्पर हो गयी जो उसके प्रश्नों का उत्तर सम्यक रूप से दे सके। उन परिव्राजकों ने भद्दा के हाथ में जामुन की एक शाखा देते हुए कहा – "यदि कोई गृहस्थ तुम्हारे द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दे दे तो तुम उसकी पादपरिचारिका बन जाना; यदि कोई प्रव्रजित तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर सम्यक रीति से दे दे तो तुम उसके द्वारा प्रव्रजित हो जाना।"

जंबु परिव्राजिका

परिव्राजकों के निर्देशों का पालन करती हुई भद्दा ग्राम-नगर विचरण करती जनसमूह के बीच लोगों के साथ शास्त्रार्थ करती। वह आसानी से विजय प्राप्त करती। कोई भी उसके प्रश्नों का जवाब न दे पाता। लोग उससे पराजित हो अपने को अपमानित महसूस करते। धीरे-धीरे भद्दा का भय लोगों में समाने लगा। लोग उसके साथ वाद करने के लिए दुस्साहस न करते। नगर-ग्राम में उसके आने की खबर सुनकर लोग वहां से पलायन कर जाते। जिस ग्राम या नगर में प्रवेश करती वहां वह नगर-ग्राम के प्रवेश द्वार पर बालू के पुंज पर जंबुशाखा को गाड़ कर यह कहती 'जो भी मेरे साथ शास्त्रार्थ करने का साहस जुटा सकें वे ही इस जंबुशाखा को उखाड़ें।"

उपर्युक्त रीति से विचरण करती हुई वह एक दिन सावत्थी के ग्राम द्वार पर जंबुशाखा को बालू की राशि पर गाड़कर भिक्षाटन के लिए प्रविष्ट हुई। बहुत से बालक जंबुशाखा को घेर कर खड़े थे। तब स्थविर सारिपुत्त भिक्षाटन के उपरान्त उन बालकों के पास पहुँचे। स्थविर सारिपुत्त के पूछने पर बालकों ने सारी घटना स्थविर को बता दी। स्थविर ने बालकों से उस जंबुशाखा को उखाड़ कर फेंकने के लिए कहा। यह सुन सभी बालक भयभीत होने लगे। स्थविर ने उनके भय को दूर करते हुए कहा – "मैं परिव्राजिका के प्रश्नों का उत्तर दूंगा, तुम इसे उखाड़ फेंको।" स्थविर के वचन से उत्साहित होकर बालकों ने जंबुशाखा को उखाड़ फेंका। परिव्राजिका ने बालकों को धमकाते हुए कहा – "मैं तुम लोगों से दया शास्त्रार्थ करूं, तुम लोगों ने इस शाखा को क्यों उखाड़ा?" बालकों ने परिव्राजिका को उत्तर दिया – "आर्य स्थविर ने हमसे उखड़वाया है।" तब

उस परिव्राजिका ने स्थविर से पूछा – "भंते! क्या आपने यह शाखा उखड़वायी है?"

"हां, बहन!"

"तो आप मेरे प्रश्नों का उत्तर देंगे?"

"अवश्य दूंगा।"

परिव्राजिका का स्थविर सारिपुत्त के साथ शास्त्रार्थ

तब लोगों की भीड़ के साथ कुण्डलकेसा शास्त्रार्थ हेतु आयुष्मान सारिपुत्त के पास गयी। शास्त्रार्थ आरंभ हुआ। परिव्राजिका को पहले प्रश्न करने का अवसर मिला। उसने अनेक प्रश्न पूछे। सभी प्रश्नों के उत्तर आयुष्मान सारिपुत्त देते रहे। अंत में आयुष्मान सारिपुत्त ने परिव्राजिका से पूछा – "क्या तुम्हारा अब भी कोई प्रश्न शेष है?"

परिव्राजिका ने उत्तर दिया – "नहीं, भंते।"

"तो क्या मैं भी तुमसे एक प्रश्न पूछूं?"

"अवश्य, भंते!"

आयुष्मान सारिपुत्त ने पूछा – "एक नाम क्या है?"

परिव्राजिका इस प्रश्न का उत्तर न दे सकी। तब वह स्थविर के चरणों में गिरकर बोली – "भंते! मैं आपकी शरण जाती हूं।"

"मेरी शरण जाने की आवश्यकता नहीं। लोक में देव और मनुष्यों के शास्ता भगवान गौतम बुद्ध यहां विहार करते हैं। तुम उन भगवान की शरण जाओ।"

"भंते! ऐसा ही करूंगी," कहकर वह सायंकाल देशना के समय भगवान के पास गयी। शास्ता को पंचांग प्रणाम करके वह एक ओर खड़ी हो गयी। उसके विवादी स्वभाव और ज्ञान को जानकर भगवान ने निम्न गाथाएं कहीं :

यो च गाथा सतं भासे, अनत्थपदसंहिता।
एकं धम्मपदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति॥

–धम्मपद १०२, सहस्सवग्गो

[जो (कोई) निरर्थक पदों से युक्त सौ गाथाएं बोले उसकी अपेक्षा एक (अकेला सार्थक) धम्मपद श्रेयस्कर होता है जिसे सुनकर (कोई व्यक्ति) शांत हो जाता है।]

यो सहस्सं सहस्सेन, सङ्गामे मानुसे जिने।
एकञ्च जेय्यमत्तानं, स वे सङ्गामजुत्तमो॥

-धम्मपद १०३, सहस्सवग्गो

[हजारों हजार मनुष्यों को संग्राम में जीतने वाले से एक अपने आपको जीतने वाला कहीं उत्तम संग्राम-विजेता होता है।]

गाथा के अंत में प्रतिसंभिदा ज्ञान के साथ भद्दा ने अर्हत्व प्राप्त किया। उसने प्रव्रज्या के लिए प्रार्थना की। भगवान के आदेश पर वह भिक्षुणी-निवास गयी और प्रव्रजित हुयी। बाद में चारों परिषदों में यह बात चली कि भद्दा कुण्डलकेसा महान है, उसने चार पदों वाली गाथा के समाप्त होते ही अर्हत्व प्राप्त कर लिया। भगवान ने भद्दा कुण्डलकेसा थेरी को अपनी क्षिप्र-अभिज्ञावाली भिक्षुणियों में अग्र घोषित किया।

अतीत कथा

भगवान पदुमुत्तर का शासनकाल

भद्दा कुण्डलकेसा ने भगवान पदुमुत्तर बुद्ध के समय हंसवती में पिता के घर में जन्म लिया। एक दिन शास्ता की धर्मकथा सुनकर एक भिक्षुणी को क्षिप्र-अभिज्ञा वाली भिक्षुणियों में अग्र की उपाधि देते देखा। उस घटना से प्रोत्साहित होकर शास्ता तथा संघ के प्रति उचित सेवा करके उन भगवान से क्षिप्र-अभिज्ञा वाली भिक्षुणियों में भावी सम्यक-संबुद्ध के काल में उस स्थान के लिए प्रार्थना की।

अपने बोधिनेत्रों से लोकनायक ने जान लिया कि इसकी मनोकामना पूर्ण होगी ही। अतः उसको आश्वस्त किया कि सुदूर भविष्य में एक ऐसा समय आयगा जब इक्ष्वाकु कुल में गौतम नाम के सम्यक-संबुद्ध लोक में उत्पन्न होंगे। उस समय तुम्हारी यह अभिलाषा पूर्ण होगी।

भगवान कस्सप का शासनकाल

भगवान कस्सप बुद्ध के काल में वह कासीराजा किकी की विश्रुत सात कन्याओं *(समणी, समणगुत्ता, भिक्खुनी, भिक्खुदायिका, धम्मा, सुधम्मा, सङ्घदायिका)* में चतुर्थ भिक्खुदायिका होकर पैदा हुई। वह भिक्षुओं को दान देने में विश्रुत थी। भगवान का धर्म सुनकर उसने प्रव्रज्या की इच्छा व्यक्त की।

पिता द्वारा प्रव्रज्या की अनुमति न मिलने पर ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई बुद्ध एवं संघ की सेवा में रत रहती।

भगवान गौतम बुद्ध का शासनकाल

भगवान कस्सप बुद्ध के काल में कासीराजा किकी के यहां जन्मी सात कन्याएं – *समणी, समणगुत्ता, भिक्खुनी, भिक्खुदायिका, धम्मा, सुधम्मा, सङ्घदायिका* - भगवान गौतम बुद्ध के काल में क्रमशः **खेमा, उप्पलवण्णा, पटाचारा, कुण्डलकेसा, गोतमी, धम्मदिन्ना** एवं **विसाखा** के रूप में विश्रुत हुई। अपने अंतिम जन्म में भगवान पदुमुत्तर की भविष्यवाणी के फलस्वरूप कुण्डलकेसा भगवान गौतम बुद्ध के काल में राजगह में जन्मी।

कुण्डलकेसा के उद्गार

फल समापत्ति में सुख से जीवन व्यतीत करते हुये कुण्डलकेसा के मुख से ये गाथाएं प्रस्फुटित हुईं -

"इद्धीसु च वसी होमि, दिब्बाय सोतधातुया।
परचित्तानि जानामि, सत्थुसासनकारिका॥

["ऋद्धियां मेरे वश में हो गयीं। शास्ता के शासन को बनाये रखने में सहायक दिव्य श्रोत्रधातु तथा परचित्त-विजानना मुझे प्राप्त हुई।]

"पुब्बेनिवासं जानामि, दिब्बचक्खु विसोधितं।
खेपेत्वा आसवे सब्बे, विसुद्धासिं सुनिम्मला॥

["पूर्वजन्मों के निवासस्थान को मैं जानती हूं, दिव्य चक्षु विशोधित हो चला, सभी आश्रवों को नष्ट कर मैं विशुद्ध तथा सुनिर्मल हूं।]

"परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता॥

["मेरे द्वारा शास्ता की सेवा की गयी, बुद्ध का शासन पूर्ण कर दिया गया। गुरु भार फेंक दिया गया, भवनेत्ति जड़ से नष्ट हो गयी।]

"यत्तत्थाय पब्बजिता, अगारस्मानगारियं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, सब्बसंयोजनक्खयो॥

["जिस उद्देश्य से गृह त्याग कर प्रव्रजित हुई, वह मेरा उद्देश्य पूर्ण हो गया। सभी संयोजनों का क्षय हो गया।]

"अत्थधम्मनिरुत्तीसु, पटिभाने तथेव च।
ञाणं मे विमलं सुद्धं, बुद्धसेट्ठस्स सासने॥

["बुद्ध श्रेष्ठ के शासन में अर्थ, धर्म, निरुक्ति तथा प्रतिभान में मेरा ज्ञान विमल एवं शुद्ध हो गया।]

"किलेसा झापिता मय्हं, भवा सब्बे समूहता।
नागीव बन्धनं छेत्वा, विहरामि अनासवा॥

["मेरे सभी क्लेश जला दिये गये। सारे भव जड़ से उखड़ गये। हथिनी की तरह सारे बंधन तोड़कर अनास्रव होकर मैं विहार करती हूं।]

-खुद्दकनिकाय अपदानपालि-२ (२.३.४७-५२), कुण्डलकेसाथेरीअपदानं

परिशिष्ट

– **दिट्ठे दिट्ठमत्तं भविस्सति** - देखने में मात्र देखना ही हो।

– **सुते सुतमत्तं भविस्सति** - सुनने में मात्र सुनना ही हो।

इसी प्रकार सूंघने में मात्र सूंघना, चखने में मात्र चखना, छूने में मात्र छूना, और जानने में मात्र जानना ही हो।"

समझदार वाहिय दारुचीरिय ने भगवान के इस संक्षिप्त उपदेश को खूब विस्तार से समझा।

आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा और मन इन छहों इंद्रिय-द्वारों में से जिस क्षण जिस किसी द्वार पर, जिस किसी विषय का याने रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य अथवा विकल्प का संस्पर्श-संघात हो, उस क्षण उसी की जानकारी हो और केवल जानकारी मात्र हो कर रह जाय। जिस क्षण जो हो रहा है, उस क्षण वही जानें। देखना तो मात्र देखना, सुनना तो मात्र सुनना, सूंघना तो मात्र सूंघना, चखना तो मात्र चखना, छूना तो मात्र छूना, सोचना तो मात्र सोचना और केवल जान कर ही रह जायं, कोई प्रतिक्रिया न करें।

सतत अभ्यास द्वारा टुकड़े-टुकड़े करके काल के उस छोटे-से-छोटे हिस्से तक जा पहुँचे, जिसे चित्त-क्षण कहते हैं। देखेंगे कि इस एक नन्हें-से चित्त-क्षण में एक-साथ दो घटना नहीं घटतीं। परंतु काल-धारा अत्यंत तीव्र गति से प्रवहमान होती रहती है, जिससे कि एक-एक क्षण को और उस एक-एक क्षण में घटने वाली घटना को हम अलग-अलग करके जानने की क्षमता गँवा बैठे हैं। तेज चलने वाले चलचित्र-सदृश इस जीवनधारा को गतिशील ही देखते रहने के इतने आदी हो गए हैं कि इस फिल्म-रील के एक-एक चित्र को अलग-अलग देख ही नहीं पाते। इसी से दृष्टि-भ्रम होता है, मरीचिका का भान होता है। इसी से पूर्वापर संबंध जुड़ता है और प्रपंच बढ़ता है। राग-द्वेष और मोह-मूढ़ता का प्रपंच। यह कैसा होता है? आओ, समझें।

छह इंद्रिय-द्वारों में से जिस किसी पर इस क्षण जो घटना घटी, उसे केवल जान कर ही नहीं रह जाते, बल्कि झट संज्ञा द्वारा पहचानते हैं। संज्ञा, याने मानस का वह हिस्सा जो कि पूर्व अनुभूतियों और स्मृतियों के बल पर पहचानने का काम करता है। संज्ञा ने पहचाना कि प्रपंच आरंभ हुआ। छूट गया यह क्षण। लगे अतीत में भ्रमण करने। ऐसी अनुभूति पहले भी हुई थी या इससे मिलती-जुलती हुई थी और हुई थी तो अच्छी लगी थी या बुरी। यह

मूल्यांकन होते ही प्रपंच और आगे बढ़ने लगता है। वेदना (शरीर पर होने वाली संवेदना) सुखद या दुःखद लगने लगती है। और तब चेतना का वह भाग जिसे संस्कार कहते हैं, झट अपना काम करने लगता है। उसका काम है प्रतिक्रिया करना। इस क्षण का देखना, सुनना, सूंघना, चखना, छूना और सोचना; अच्छा लगा तो राग की ओर बुरा लगा तो द्वेष की प्रतिक्रिया आरंभ हो जाती है। मन भविष्य में लोट-पलोट लगाने लगता है। ऐसा हो, ऐसा न हो। यों भूतकाल की याद और भविष्य की कामना, कल्पना और चित्तधारा पर राग-द्वेष की रेल-पेल चलने लगती है। इस क्षण जो देखना आदि हुआ उसे महज देखने आदि तक ही सीमित रखें तो न प्रपंच आरंभ होता है, न ही बढ़ता है। अनारंभी ही प्रपंच-मुक्त होता है।

साधक ध्यान देता है तो देखता है कि शरीर के पांच द्वारों पर स्पर्श-संघात की अनुभूति जितनी वार और जितनी देर होती है, उसके मुकाबले मन पर होने वाली कहीं अधिक है। देखने, सुनने, सूंघने, चखने और छूने की अपेक्षा सोचने का काम कई गुना अधिक होता है। जो घटना मन पर ही घटी, उसकी रेल-पेल तो मन पर चलती ही है, परंतु जो इन पांच कायेन्द्रियों में से किसी पर घटी, उसकी भी प्रतिक्रिया मन पर ही होती रहती है। यह सारा प्रपंच, बढ़ाव, फैलाव मन से ही होता है; क्योंकि आरंभ मन से ही होता है। जब तक हम जीवित हैं और तन-मन के छह आयतन (खिड़की-दरवाजे) खुले हैं, तब तक हर क्षण किसी-न-किसी आयतन से कुछ-न-कुछ प्रविष्ट होता ही रहता है और उसे लेकर यह पागल आरंभी मन राग-द्वेष आरंभ कर प्रपंच बनाता ही रहता है। ऐसी अवस्था में चित्त-विशुद्धि कहां? चित्त-विशुद्धि कहां?

क्षण-क्षण के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें अलग-अलग नहीं जानने से प्रत्युत्पन्न, याने, वर्तमान को, अतीत और अनागत से गड्डमड्ड किए रहते हैं। इससे एक और कठिनाई पैदा होती है। घटनाओं के इस तारतम्य में एक सूत्र पिरोया हुआ आभासित होता है – अहंभाव का, अस्मिताभाव का, आत्मभाव का एक अविरल सूत्र। इसी से एक 'मैं' का अस्तित्व उभरता है। धीरे-धीरे यह 'मैं है' कि प्रतीति 'मैं हूं' में परिवर्तित हो कर दृढ़मूल हो जाती है। यह 'मैं हूं' जिसने कि बचपन से अब तक ऐसी-ऐसी अनुभूतियां कीं और यह 'मैं हूं' जो भविष्य में ऐसी-ऐसी अनुभूतियां करूंगा। 'मैं हूं' का यह भ्रम इस अस्तित्वहीन 'मैं' के प्रति आसक्तियां पैदा करता है जो कि राग और द्वेष की अग्नि को और अधिक प्रज्वलित करता है। यह 'मैं हूं' की

अविद्या ही है जो कि राग-द्वेष को, और राग-द्वेष की मोहमूढ़ता ही है जो कि 'मैं हूं' को परस्पर बलवान बनाती रहती है।

साधक अपने सतत अभ्यास द्वारा फिल्म की रील के टुकड़े-टुकड़े कर लेता है तो 'मैं हूं' का भ्रम टूटता है। 'मैं हूं' फिर 'मैं है' में परिवर्तित होता है और 'मैं है' केवल लोक व्यवहार के लिए रह जाता है। इसमें 'मैं' के अलग-थलग व्यक्तित्व की भ्रांति दूर होती है। एक-एक क्षण का अपने आप में अलग-अलग साक्षात्कार होने लगता है। भ्रम टूट कर वस्तुस्थिति स्पष्ट होती है। प्रज्ञा जागती है, अविद्या का सारा क्लेश दूर होता है। राग-द्वेष की नयी गांठें बँधनी बंद होती हैं और पुरानी खुलने लगती हैं।

तब देखने में 'देखता हूं' का भ्रम दूर होता है। 'देखने में मात्र देखना' ही रह जाता है। जैसे देखने में मात्र देखना, वैसे ही सुनने में मात्र सुनना, सूंघने में मात्र सूंघना, चखने में मात्र चखना, छूने में मात्र छूना रह जाता है और ऐसे ही जानने में मात्र जानना रह जाता है। 'कर रहा हूं' या 'भोग रहा हूं' की जगह 'हो रहा है' की सच्चाई प्रकट होती है। भोक्ताभाव और कर्त्ताभाव की माया विदीर्ण होती है। अहंभाव अहंकार-विहीनता में प्रतिष्ठित होता है। आत्मभाव अनात्मभाव में बदलता है।

अब तक तो केवल सैद्धांतिक स्तर पर ही साधक यह मानकर चलता था कि यह काया और यह चित्त-प्रपंच 'मैं' नहीं हूं, 'मेरा' नहीं है, 'मेरी आत्मा' नहीं है। परंतु अब महज मानने की बात नहीं रह जाती। अब तो वह स्वानुभूतियों के बल पर इस सच्चाई को स्वयं जान लेता है और उसे स्पष्ट होता है कि इन ऐंद्रिय अनुभूतियों के कारण किसी 'मैं' का अस्तित्व नहीं है और तब यह भी स्पष्ट होता है कि इन ऐंद्रिय अनुभूतियों में भी किसी 'मैं' का अस्तित्व नहीं है। न यह ऐंद्रिय अनुभूतियां किसी 'मैं' को धारण किए हुए हैं और न कोई 'मैं' इन इंद्रियों को धारण किए हुए है।

यही बात वाहिय दारुचीरिय को समझाते हुए भगवान ने कही कि जब तुम्हें **दिट्ठे दिट्ठमत्तं भविस्सति** ... याने देखने में देखना मात्र .... आदि होने लगे तो **ततो त्वं न तेन** याने इस देखने, सुनने आदि के कारण से तुम हो, यह भ्रांति दूर होगी और तभी **ततो त्वं न तत्थ** याने इस देखने, सुनने आदि में तुम हो, यह भ्रम भी मिटेगा। ऐसी अहंशून्य स्थिति होते ही लोकोत्तर निर्वाण का साक्षात्कार होगा। **एसेवन्तो दुक्खस्सा** यही दुःखों का अंत है।